नईदुनिया

संपादकीय

टाटा संस में कुर्सी की लड़ाई नहीं ट्रस्ट की आत्मा का संकट है

टाटा नाम भारत में केवल एक कंपनी का नाम नहीं है, यह भरोसा है। उस भरोसे की नींव तब पड़ी थी, जब जमशेदजी टाटा ने कहा था कि हम जो कमाते हैं, उसका बड़ा हिस्सा समाज को लौटाते हैं। इसी सिद्धांत पर टाटा ट्रस्ट्स बने, जिनके पास आज टाटा संस की 66 प्रतिशत हिस्सेदारी है। चेयरमैन एन. चंद्रशेखरन की पुनर्नियुक्ति पर उठा विवाद दो व्यक्तियों की लड़ाई नहीं है। यह टाटा समूह की आत्मा और भविष्य की दिशा का सवाल है।

12 अगस्त 2026 को चंद्रशेखरन ने बोर्ड को लिखकर कहा कि वे फरवरी 2027 में कार्यकाल खत्म होने के बाद तीसरी बार चेयरमैन नहीं बनना चाहते। टाटा ट्रस्ट्स ने इसे स्वीकार कर लिया और नए उत्तराधिकारी की खोज शुरू हुई। फिर 17 सितंबर को कहानी पलटी। नॉमिनेशन एंड रेम्यूनरेशन कमेटी के कहने पर चंद्रशेखरन मान गए और बोर्ड ने 4-1 के बहुमत से उन्हें पांच साल का और कार्यकाल दे दिया।

यहीं पेंच फंसा। टाटा ट्रस्ट्स के चेयरमैन नोएल टाटा ने प्रस्ताव के खिलाफ वोट किया। ट्रस्ट्स का तर्क है कि टाटा संस के आर्टिकल ऑफ एसोसिएशन के मुताबिक चेयरमैन की नियुक्ति के लिए ट्रस्ट के दोनों नॉमिनी डायरेक्टर्स की सहमति जरूरी है। दूसरी तरफ बोर्ड का कहना है कि बहुमत से फैसला वैध है। मामला एजीएम और संभवत: कोर्ट रूम तक जा सकता है, क्योंकि 66 प्रतिशत शेयर ट्रस्ट्स के पास हैं।

असली लड़ाई लिस्टिंग और पैसे की है। रिजर्व बैंक ने 2022 में टाटा संस को अपर लेयर एनबीएफसी घोषित किया था। नियम के मुताबिक ऐसी कंपनी को शेयर बाजार में लिस्ट होना पड़ेगा। टाटा संस ने इससे बचने के लिए अपना कोर इन्वेस्टमेंट कंपनी रजिस्ट्रेशन सरेंडर करने और 21 हजार करोड़ का कर्ज चुकाने का दांव चला, पर 11 सितंबर 2026 को आरबीआई ने आवेदन खारिज कर दिया। अब लिस्टिंग लगभग तय है।

नए कारोबारों में भारी निवेश और रिटर्न का सवाल भी सामने है। टाटा डिजिटल, एयर इंडिया, सेमीकंडक्टर और बैटरी जैसे क्षेत्रों में हजारों करोड़ लगे हैं, पर रिटर्न अभी दूर है। फरवरी 2026 से ट्रस्ट इस कैपेक्स पर सवाल उठा रहा था। नोएल टाटा का तर्क था कि परोपकार के पैसे से चलने वाली कंपनी अंधाधुंध जोखिम नहीं ले सकती। चंद्रशेखरन का तर्क था कि बिना जोखिम के टाटा भविष्य में पिछड़ जाएगा।

यह विवाद साइरस मिस्त्री विवाद की याद दिलाता है। तब भी अदालतों तक मामला गया और टाटा की साख को धक्का लगा। आज फिर वही खतरा है। टाटा को पारदर्शिता और सर्वसम्मति के सिद्धांतों पर लौटना होगा। यदि ट्रस्ट के नॉमिनी की सहमति जरूरी है, तो उसे कागज पर नहीं, भावना में भी मानना होगा। बहुमत का खेल टाटा संस्कृति नहीं है।

यह लड़ाई टाटा संस के चेयरमैन की कुर्सी की नहीं है। यह सवाल है कि क्या टाटा भविष्य में भी मूल्य-आधारित समूह बना रहेगा या सामान्य कॉर्पोरेट घराना बन जाएगा। जेआरडी टाटा ने कहा था कि कोई भी सफलता तब तक सफलता नहीं है, जब तक वह लोगों के काम न आए। विवाद को कोर्ट में नहीं, बंद कमरे में सुलह से सुलझाना ही टाटा की जीत होगी।

आजकल

स्कूलों के आसपास जंक फूड पर सख्ती, अब अमल की परीक्षा

बच्चों के खानपान की आदतें उनके भविष्य के स्वास्थ्य से जुड़ी हैं। इसलिए स्कूलों के आसपास अधिक वसा, चीनी और नमक वाले खाद्य पदार्थों की बिक्री पर नियंत्रण का उद्देश्य बेहतर खाद्य वातावरण बनाना होना चाहिए।

भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण ने अगस्त 2026 में 2020 के स्कूल खाद्य नियमों में संशोधन का मसौदा जारी किया है। इसमें उच्च वसा, अतिरिक्त चीनी और नमक की स्पष्ट पोषण सीमाएं प्रस्तावित की गई हैं। ठोस खाद्य पदार्थ में 4.2 ग्राम प्रति 100 ग्राम से अधिक अतिरिक्त वसा, 3 ग्राम से अधिक अतिरिक्त चीनी और 0.625 ग्राम से अधिक नमक होने पर उसे उच्च मात्रा वाला माना जाएगा। तरल पदार्थों के लिए भी अलग सीमाएं तय हैं। ये मानक भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद की 2024 की आहार गाइडलाइन पर आधारित हैं। मसौदे पर 9 अक्टूबर 2026 तक सुझाव मांगे गए हैं, इसलिए इन्हें अभी अंतिम नियम नहीं माना जा सकता।

स्कूलों और उनके 50 मीटर दायरे में ऐसे खाद्य पदार्थों पर प्रतिबंध का प्रावधान नया नहीं है। 2020 के नियमों में स्कूल परिसर, कैंटीन, मेस और आसपास के क्षेत्र में उच्च वसा, ट्रांस फैट, अतिरिक्त चीनी या सोडियम वाले खाद्य पदार्थों की बिक्री तथा विज्ञापन पर रोक का प्रावधान है। नई पहल का महत्व इन श्रेणियों को मापने के लिए स्पष्ट मानक उपलब्ध कराना है।

अब असली चुनौती क्रियान्वयन की है। केवल नियम बनाने से बच्चों की खानपान की आदतें नहीं बदलेंगी। स्कूलों में पौष्टिक विकल्प उपलब्ध कराने, अभिभावकों को जागरूक करने और आसपास की दुकानों की नियमित निगरानी जरूरी होगी। राज्यों के खाद्य सुरक्षा विभागों को जिम्मेदारी प्रभावी ढंग से निभानी होगी। बच्चों को जंक फूड से दूर रखना प्रतिबंध का विषय भर नहीं है। उन्हें स्वाद के साथ पोषण का विकल्प देना भी जरूरी है। यदि मसौदा प्रभावी नियम बनता है और उसका समान रूप से पालन होता है, तभी स्कूलों के आसपास का खाद्य वातावरण स्वस्थ बनाया जा सकेगा।

संशोधित ईपीएफ सीमा और सामाजिक सुरक्षा तंत्र का निर्माण, कदम-दर-कदम आगे बढ़ते हुए

वी. अनंत नागेश्वरन्
और सुश्री श्रुति सिंह

विश्वकर्मा जयंती पर, कामगारों और शिल्पकारों का सम्मान करने वाले इस पर्व के अवसर पर सरकार ने कर्मचारी भविष्य निधि संगठन (ईपीएफओ) के लिए वेतन सीमा को 15,000 रुपये से बढ़ाकर 25,000 रुपये प्रति माह करने के बहुत समय से लंबित निर्णय की घोषणा की। कोई पूछ सकता है कि सीमा में 10,000 रुपये की वृद्धि से आखिर क्या बदलाव आएगा? इस संशोधन की आवश्यकता क्यों है और इसका कर्मचारी या नियोक्ता पर क्या प्रभाव पड़ेगा? तो आइए, मूल बातों से शुरुआत करते हैं।

25,000 रुपये की यह वैधानिक वेतन सीमा अनिवार्य ईपीएफ, कर्मचारी पेंशन योजना (ईपीएस) और कर्मचारी जमा-लिंक्ड बीमा (ईडीएलआई) कवरेज के लिए सीमा का काम करती है। ये तीनों योजनाएं भारत में वेतनभोगी कामगारों के लिए सामाजिक सुरक्षा तंत्र के मूल आधार हैं: सेवानिवृत्ति/आपातकालीन निधि; नियोक्ता के अंशदान से वित्तपोषित पेंशन निधि, जिससे सेवानिवृत्ति के बाद भुगतान किया जाता है; और जीवन बीमा, जिसे नियोक्ता के अंशदान से ही वित्तपोषित किया जाता है, जिससे कर्मचारी की मृत्यु की स्थिति में उसके परिवार को सहायता मिल सके। पूर्णत: उचित यही है कि सामाजिक सुरक्षा को साल 2014 से स्थिर किसी संख्या पर आधारित न रखा जाए, जबकि इस अवधि में वेतन, न्यूनतम मजदूरी और जीवन-यापन की लागत लगातार बढ़ती रही है।

पिछली वेतन सीमा के तहत, 15,000 रुपये से अधिक मासिक वेतन पर नौकरी शुरू करने वाला कोई भी नया कर्मचारी अनिवार्य ईपीएफ कवरेज से बाहर हो जाता था, ईपीएस के लिए पात्र नहीं होता था और ईडीएलआई के संरक्षण से भी वंचित रहता था। किसी मौजूदा कर्मचारी का वेतन समय के साथ इस सीमा से अधिक हो जाने पर कवरेज समाप्त नहीं होती थी, लेकिन ईपीएस के तहत पेंशन योग्य वेतन 15,000 रुपये पर ही सीमित रहता था। कोई यह तर्क दे सकता है कि अधिक वेतन पाने वाले कर्मचारी इसके बजाय स्वैच्छिक कवरेज का विकल्प चुन सकते हैं। इस तर्क में समस्या यह है कि सीमा से अधिक वेतन पर स्वैच्छिक नामांकन के लिए संयुक्त विकल्प के तहत नियोक्ता की सहमति आवश्यक होती है, जिससे यह विकल्प सुनिश्चित अधिकार के बजाय सौदेबाज़ी का विषय बन जाता है। बढ़ी हुई वेतन सीमा के साथ, यह कवरेज सौदेबाज़ी का विषय न रहकर अधिकार बन जाएगी।

बढ़ी हुई वेतन सीमा कामगारों से जुड़ी सभी समस्याओं का समाधान तो नहीं करती, लेकिन यह औपचारिक सामाजिक सुरक्षा तंत्र को थोड़ा अधिक न्यायसंगत और थोड़ा व्यापक जरूर बनाती है। 10,000 रुपये की वृद्धि भले ही मामूली लगती हो, लेकिन अब सामाजिक सुरक्षा तंत्र के दायरे में आने वाले अतिरिक्त 51 लाख कामगारों की संख्या मामूली नहीं है। और अधिकांश अधिकारों के विपरीत, इस अधिकार का लाभ लेने के लिए कामगार को अपनी ओर से कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है।

मनुष्य अपने भविष्य की कल्पना करने और उसके लिए तैयारी करने में खास अच्छे नहीं होते। 65 वर्ष की उम्र के अपने भावी स्वरूप के लिए कोई बजट नहीं बनाता। हम अक्सर उस छोटे लाभ को चुनते हैं जो जल्दी मिल जाए, बजाय उस बड़े लाभ के जो देर से मिले। व्यवहार अर्थशास्त्र में इसे 'हाइपरबोलिक डिस्काउंटिंग' कहा जाता है। परिणामस्वरूप, सीमित आय में तत्काल उपभोग की जरूरतों को पूरा करने की तुलना में भविष्य में अपने लिए या किसी भावी परिस्थिति के लिए बचत करना और योजना बनाना अक्सर अधिक कठिन होता है। यही कारण है कि ईपीएफओ द्वारा संचालित अनिवार्य सामाजिक सुरक्षा अंशदान जैसी व्यवस्थाओं की रूपरेखा महत्वपूर्ण है। यह बचत के लिए कामगार की इच्छा या इच्छाशक्ति पर निर्भर किए बिना काम करती है। आय के कामगार के खाते में पहुंचने से पहले ही पेंशन के लिए अंशदान अलग रख दिया जाता है-जो पैसा कभी दिखाई ही नहीं देता, उसे खर्च करना संभव नहीं होता। और धीरे-धीरे, हर महीने वेतन का एक छोटा हिस्सा अलग रखा जाता है, जिससे सेवानिवृत्ति निधि तैयार होती है, जिसका उपयोग आपातकाल में भी किया जा सकता है, साथ ही जीवन बीमा का कवरेज भी मिलता है-वह भी आपके अपनी ओर से बिना कोई अतिरिक्त प्रयास किए।

हालांकि, इस संशोधन के साथ नियोक्ताओं के लिए एक लागत भी जुड़ी हुई है। अनिवार्य वेतन सीमा अब बढ़ाकर 25,000 रुपये किए जाने के साथ, नियोक्ताओं को काफी अधिक संख्या में कर्मचारियों को वैधानिक ईपीएफ कवरेज प्रदान करनी होगी और उनके मासिक अंशदान संबंधी दायित्व भी बढ़ जाएंगे। उदाहरण के लिए, 22,000 रुपये प्रति माह कमाने वाला ऐसा कर्मचारी, जो पहले अनिवार्य कवरेज से बाहर था, अब वैधानिक रूप से ईपीएफ कवरेज के दायरे में आएगा और नियोक्ता के लिए इस कर्मचारी को ईपीएफ कवरेज प्रदान करना अनिवार्य होगा। अब नियोक्ता को वेतन का 12 प्रतिशत अंशदान करना होगा, जो ईपीएस पेंशन योजना और कर्मचारी के अपने ईपीएफ खाते के बीच विभाजित होगा। यह राशि प्रति कर्मचारी प्रति माह 2,640 रुपये या वार्षिक 31,680 रुपये होगी। ऐसे 20 कर्मचारियों के मामले में, यह अतिरिक्त पेरोल लागत के रूप में प्रति वर्ष 6,33,600 रुपये होगी। इसके अलावा, ईडीएलआई बीमा अंशदान भी होगा, जो राशि में भले ही छोटा है, लेकिन अब इसकी गणना भी अधिक वेतन आधार पर की जाएगी। नियुक्ति संबंधी निर्णय लेते समय यह नियोक्ताओं के लिए एक वास्तविक लागत है।

अधिक लागत कंपनी के लिए एक स्पष्ट निष्कर्ष प्रतीत होती है, लेकिन यह केवल प्रारंभिक प्रभाव है और रोजगार बाजार इससे कहीं अधिक जटिल है। अधिक ईपीएफ कवरेज भर्ती के लिए एक सकारात्मक संकेत के रूप में काम करता है, जिससे अधिक कुशल और अधिक कार्य-क्षमता वाले कामगार आकर्षित होते हैं, क्योंकि नए कर्मचारी किसी नौकरी का मूल्यांकन करते समय केवल मासिक वेतन को ही ध्यान में नहीं रखते। यह कवरेज कर्मचारियों को लंबे समय तक बनाए रखने में भी सहायक हो सकती है। पेंशन और बीमा लाभ वाला कामगार संभवत: अधिक समय तक काम पर बना रहेगा और नौकरी की शुरुआत थोड़ी अधिक सुरक्षा के साथ करेगा। दूरदर्शी नियोक्ता पहले से ही इसे समझते हैं और अच?छी प्रतिभाओं को आकर्षित करने के लिए स्वैच्छिक कवरेज प्रदान करते हैं।

सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा यह है कि यह ट्रैम्पोलीन की तरह न केवल आपको संभालती है, बल्कि फिर से उछलकर आगे बढ़ने में भी सक्षम बनाती है। इस व्यवस्था का मूल उद्देश्य कामगारों को ऐसा कोष उपलब्ध कराना है, जिससे वे आपातकाल के समय या सेवानिवृत्ति के बाद आवश्यकता पड़ने पर धन प्राप्त कर सकें, जिससे कोई अस्थायी संकट जीवनभर की कठिनाई का रूप न ले और उन्हें ऋण-जाल में न फंसाए।

आयुष्मान भारत प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना जैसी पहलें, जिन्होंने स्वास्थ्य सेवाओं को अधिक किफायती और सुलभ बनाया है, इस सुरक्षा तंत्र को और मज़बूत बनाती हैं। बदलते रोज़गार स्वरूप हेतु तैयारी करने के लिए मजबूत उद्योग संपर्कों के साथ, कौशल उन्नयन, पुन:कौशल विकास और नव कौशल विकास के लिए कौशल विकास पारितंत्र का निर्माण किया जा रहा है। अटल पेंशन योजना (एपीवाई) अंशदायी पेंशन कवरेज को उन लोगों के लिए कम आय वर्ग तक और आगे बढ़ाती है, जो निवेश जोखिम उठाने और आर्थिक तथा बाजार वृद्धि के लाभों में भागीदारी के इच्छुक हैं। यह ट्रैम्पोलीन भी कदम दर कदम मज़बूत होता जा रहा है।

(वी. अनंत नागेश्वरन् भारत सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार हैं और श्रुति सिंह भारतीय आर्थिक सेवा की अधिकारी हैं। उनके विचार व्यक्तिगत हैं।)

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सीट, समर्थन से आगे की परीक्षा

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता का प्रश्न सितंबर 2026 में फिर चर्चा के केंद्र में है। न्यूयॉर्क में भारत और विसेग्राद समूह यानी वी4 के देशों पोलैंड, हंगरी, स्लोवाकिया और चेक गणराज्य की पहली विदेश मंत्री स्तरीय बैठक में चारों देशों ने भारत की स्थायी सदस्यता की मांग का समर्थन किया। यह समर्थन भारत की कूटनीतिक कोशिशों के लिए महत्वपूर्ण है, लेकिन इसे स्थायी सीट की दिशा में निर्णायक प्रगति मानना जल्दबाजी होगी। सुरक्षा परिषद में बदलाव के लिए केवल राजनीतिक समर्थन पर्याप्त नहीं है। इसके लिए व्यापक अंतरराष्ट्रीय सहमति और संयुक्त राष्ट्र चार्टर में संशोधन आवश्यक है।

भारत की मांग का आधार केवल उसकी बढ़ती आर्थिक और सामरिक क्षमता नहीं है। भारत लंबे समय से कहता रहा है कि 1945 में बनी सुरक्षा परिषद की संरचना आज की वैश्विक वास्तविकताओं को पूरी तरह प्रतिबिंबित नहीं करती। वर्तमान परिषद में 15 सदस्य हैं, जिनमें अमेरिका, चीन, रूस, फ्रांस और ब्रिटेन पांच स्थायी सदस्य हैं। इनके पास वीटो अधिकार है। बाकी दस सदस्य दो वर्ष के कार्यकाल के लिए चुने जाते हैं। भारत का तर्क है कि एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका जैसे क्षेत्रों की वर्तमान भूमिका को देखते हुए वैश्विक निर्णय प्रक्रिया में उनका प्रतिनिधित्व बढ़ना चाहिए।

भारत का संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के साथ लंबा अनुभव भी उसकी दावेदारी का एक आधार है। वह अब तक आठ बार अस्थायी सदस्य रह चुका है। उसका सबसे हालिया कार्यकाल 2021 से 2022 तक था। यह पुराना आंकड़ा जरूर है, लेकिन भारत के सुरक्षा परिषद अनुभव का ऐतिहासिक रिकॉर्ड है, इसे वर्तमान स्थिति बताकर पेश नहीं किया जाना चाहिए। 2026 में भारत की मौजूदा कोशिश का केंद्र स्थायी सदस्यता और व्यापक सुरक्षा परिषद सुधार है।

भारत को चार मौजूदा स्थायी सदस्यों अमेरिका, फ्रांस, रूस और ब्रिटेन का समर्थन प्राप्त है। इसके अलावा भारत ब्राजील, जर्मनी और जापान के साथ जी4 समूह में है। ये चारों देश सुरक्षा परिषद की स्थायी और अस्थायी दोनों श्रेणियों के विस्तार की

वकालत करते हैं। सितंबर 2026 में वी4 के चार देशों का समर्थन इस प्रयास में जुड़ा है। लेकिन समर्थन का विस्तार और सुधार प्रस्ताव पर अंतिम सहमति, दो अलग चरण हैं।

सबसे जटिल प्रश्न चीन का है। 12 सितंबर 2026 के ब्रिक्स नई दिल्ली घोषणा-पत्र में चीन और रूस ने भारत तथा ब्राजील की संयुक्त राष्ट्र में, जिसमें सुरक्षा परिषद भी शामिल है, बड़ी भूमिका निभाने की आकांक्षा का समर्थन किया। लेकिन इस घोषणा की भाषा को ध्यान से पढ़ना जरूरी है। इसमें भारत को नए स्थायी सदस्य के रूप में स्पष्ट समर्थन या वीटो अधिकार देने की सहमति दर्ज नहीं है। इसलिए चीन के रुख को भारत की स्थायी सदस्यता के लिए अंतिम समर्थन मानना तथ्यात्मक रूप से उचित नहीं होगा।

चीन का महत्व केवल उसके राजनीतिक रुख के कारण नहीं है। वह सुरक्षा परिषद के पांच स्थायी सदस्यों में शामिल है और उसके पास वीटो अधिकार है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर में संशोधन की प्रक्रिया में भी सभी मौजूदा स्थायी सदस्यों की पुष्टि जरूरी है। इसलिए भारत को अपनी दावेदारी के लिए व्यापक समर्थन जुटाने के साथ चीन समेत सभी स्थायी सदस्यों के साथ सुधार के स्वरूप पर सहमति बनाने की जरूरत होगी।

यहां एक और बड़ा सवाल वीटो अधिकार का है। यदि नए स्थायी सदस्य बनाए जाते हैं तो क्या उन्हें मौजूदा स्थायी सदस्यों के समान वीटो मिलेगा? भारत के लिए यह केवल तकनीकी विषय नहीं है, क्योंकि बिना समान अधिकार वाली स्थायी सदस्यता से सुरक्षा परिषद की मौजूदा शक्ति संरचना में कितना बदलाव आएगा, यह अपने आप में बहस का विषय है। दूसरी ओर अफ्रीकी देशों की भी स्थायी प्रतिनिधित्व की मांग है। अफ्रीकी संघ लंबे समय से कम से कम दो स्थायी सीटों और अतिरिक्त अस्थायी सीटों की मांग करता रहा है। इसलिए सुरक्षा परिषद सुधार की बहस में भारत की सीट के साथ अफ्रीका के प्रतिनिधित्व और वीटो का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है।

सबसे कठिन हिस्सा संयुक्त राष्ट्र की कानूनी प्रक्रिया है। चार्टर के अनुच्छेद 108 के अनुसार किसी संशोधन को पहले महासभा के दो-तिहाई सदस्यों के मत से स्वीकार किया जाना चाहिए। इसके बाद संयुक्त राष्ट्र के दो-तिहाई सदस्य देशों को अपनी संवैधानिक प्रक्रिया के अनुसार उसकी पुष्टि करनी होगी। इसमें सुरक्षा परिषद के सभी पांच मौजूदा स्थायी सदस्यों की पुष्टि अनिवार्य है। इसलिए भारत के पक्ष में बड़ी संख्या में देश खड़े होने के बावजूद प्रक्रिया तब तक पूरी नहीं हो सकती, जब तक पांचों स्थायी सदस्यों की पुष्टि हासिल न हो।

यही वजह है कि वी4 देशों का समर्थन महत्वपूर्ण होने के बावजूद इसे अंतिम सफलता के रूप में नहीं देखा जा सकता। भारत को यूरोप के अलावा अफ्रीका, लैटिन अमेरिका, एशिया और अन्य क्षेत्रों में भी व्यापक सहमति बनाने की आवश्यकता होगी। इसके साथ ही जी4 और अन्य सुधार समर्थक देशों को यह तय करना होगा कि नई परिषद में कितनी सीटें हों, नए स्थायी सदस्यों के अधिकार क्या हों और वीटो व्यवस्था का भविष्य क्या हो।

भारत की स्थायी सदस्यता का सवाल केवल भारत की राष्ट्रीय आकांक्षा नहीं, बल्कि संयुक्त राष्ट्र की प्रतिनिधिकता का प्रश्न भी है। दुनिया की राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में पिछले आठ दशकों में बड़ा बदलाव आया है, जबकि सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता का मूल ढांचा अब भी वही है। इसलिए सुधार की बहस में भारत की दावेदारी के साथ पूरी व्यवस्था को अधिक प्रतिनिधिक बनाने का प्रश्न जुड़ा हुआ है।

सितंबर 2026 की स्थिति में भारत के पक्ष में समर्थन का दायरा बढ़ा है, लेकिन अंतिम निर्णय से अभी लंबी दूरी है। आगे की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि भारत व्यापक सुधार के लिए कितनी सहमति बना पाता है, वीटो जैसे कठिन प्रश्नों पर किस तरह का समझौता सामने आता है और चार्टर संशोधन की अनिवार्य प्रक्रिया में सभी स्थायी सदस्यों की पुष्टि कैसे हासिल होती है। वी4 का समर्थन इस लंबी कूटनीतिक प्रक्रिया का एक नया पड़ाव है, मंजिल नहीं।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

गिद्ध बचेंगे तो प्रकृति की सफाई व्यवस्था भी बचेगी

गिद्धों को देखकर अक्सर मन में डर या अरुचि का भाव पैदा होता है। उनकी झुकी हुई गर्दन, नुकीली चोंच और मृत पशुओं के आसपास मंडराते झुंड का दृश्य किसी को आकर्षक नहीं लगता। लेकिन प्रकृति की दुनिया में यही पक्षी ऐसी जिम्मेदारी निभाते हैं, जिसे मनुष्य अरबों रुपये खर्च करके भी पूरी तरह नहीं निभा सकता। वे प्रकृति के सफाईकर्मी हैं और कई संक्रामक रोगों के खिलाफ पहली प्राकृतिक सुरक्षा पंक्ति भी। इसलिए गिद्धों का कम होना केवल जैव-विविधता के लिए चिंता नहीं, बल्कि पर्यावरण और जनस्वास्थ्य के लिए भी गंभीर चेतावनी है।

गिद्धों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी सफाई व्यवस्था है। कोई पशु मरता है तो उसका शव कुछ ही समय में रोगजनक जीवाणुओं और अन्य सूक्ष्मजीवों का स्रोत बन सकता है। खुले में पड़ा शव मिट्टी और जल को दूषित कर सकता है तथा दूसरे मृतभक्षी जीवों और आवारा कुत्तों की संख्या बढ़ा सकता है। गिद्ध इन शवों को तेजी से खाकर इस जैविक कचरे को प्रकृति से हटा देते हैं। उनके पाचन तंत्र की अत्यधिक अम्लीय प्रकृति अनेक रोगजनकों को नष्ट करने में सक्षम होती है। इस तरह उनका काम केवल सफाई तक सीमित नहीं, बल्कि पारिस्थितिकी और जनस्वास्थ्य दोनों से जुड़ा है।

भारत में गिद्धों की आबादी में पिछले कुछ दशकों में आई भारी गिरावट ने इस प्राकृतिक व्यवस्था की अहमियत को और स्पष्ट किया है। 1990 के दशक के बाद कुछ प्रमुख गिद्ध प्रजातियों की संख्या में 95 प्रतिशत से अधिक कमी दर्ज की गई। इसका सबसे बड़ा कारण पशुओं के उपचार में इस्तेमाल होने वाली डाइक्लोफेनाक दवा सामने आया। दवा से उपचारित पशु की मृत्यु के बाद जब गिद्ध उसके शव को खाते थे, तो जहरीली दवा उनके शरीर में पहुंचकर उनकी मृत्यु का कारण बनती थी। सरकार ने 2006 में पशु चिकित्सा में डाइक्लोफेनाक के इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगाया, लेकिन गिद्ध संरक्षण की चुनौती यहीं खत्म नहीं हुई।

गिद्धों की संख्या घटने के बाद खुले में पड़े पशुओं के शवों की संख्या बढ़ी और आवारा कुत्तों के लिए भोजन की उपलब्धता बढ़ी। इससे उनके बढ़ते दबाव और रेबीज जैसे रोगों के जोखिम को लेकर चिंता सामने आई। यह पूरा घटनाक्रम बताता है कि प्रकृति में किसी एक प्रजाति का संकट अक्सर अकेला संकट नहीं होता। एक कड़ी कमजोर होती है तो उसका असर पूरी पारिस्थितिक श्रृंखला पर पड़ सकता है।

इसीलिए हरियाणा के पिंजौर स्थित जटायु संरक्षण एवं प्रजनन केंद्र का काम विशेष महत्व रखता है। हरियाणा वन विभाग और बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी की संयुक्त पहल के रूप में स्थापित यह केंद्र तीन गंभीर रूप से संकटग्रस्त प्रजातियों, व्हाइट-रम्प्ड, लॉन्ग-बिल्ड और स्लेंडर-बिल्ड गिद्धों के संरक्षण पर काम कर रहा है। यहां प्रजनन, स्वास्थ्य जांच, पृथक्करण, कृत्रिम ऊष्मायन और व्यवहार की निगरानी जैसी वैज्ञानिक प्रक्रियाएं अपनाई जाती हैं।

मार्च 2025 तक पिंजौर केंद्र में 379 गिद्ध मौजूद थे। 2024-25 के प्रजनन सत्र में 47 अंडे दिए गए और उनमें से 31 चूजे सफलतापूर्वक निकले। यह संख्या अपने आप में केवल प्रजनन की उपलब्धि नहीं है, बल्कि उस वैज्ञानिक प्रयास का संकेत है जिसके जरिए विलुप्ति के कगार पर पहुंची प्रजातियों के लिए सुरक्षित आबादी तैयार की जा रही है।

अब संरक्षण की दिशा केवल बंद पक्षीगृह में गिद्धों को बढ़ाने तक सीमित नहीं है। संरक्षण केंद्रों में जन्मे गिद्धों को सुरक्षित प्राकृतिक क्षेत्रों में छोड़ना और उनके व्यवहार तथा आवाजाही पर नजर रखना अगला महत्वपूर्ण चरण है। बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी के अनुसार उपग्रह आधारित निगरानी से यह पता लगाने में मदद मिलती है कि छोड़े गए गिद्ध कहां जा रहे हैं, किस क्षेत्र का इस्तेमाल कर रहे हैं और उन्हें जंगल में किन खतरों का सामना करना पड़ रहा है। 2025-26 में महाराष्ट्र के मेलघाट, पेंच और ताडोबा क्षेत्रों में भी संरक्षण केंद्रों में पाले गए गिद्धों को जंगल में वापस स्थापित करने के प्रयास किए गए।

लेकिन गिद्ध संरक्षण की सफलता केवल प्रजनन केंद्रों से तय नहीं होगी। जंगल में छोड़े गए पक्षियों के लिए सुरक्षित भोजन, उपयुक्त आवास और जहरीली पशु-औषधियों से मुक्त वातावरण जरूरी है। बिजली की लाइनें भी एक खतरा बन सकती हैं। इसलिए गिद्ध सुरक्षित क्षेत्र, पशु चिकित्सकों में जागरूकता, दवाओं की निगरानी और स्थानीय समुदायों की भागीदारी को संरक्षण नीति का हिस्सा बनाना होगा।

विडंबना यह है कि जिस पक्षी को हमने अशुभ समझकर लंबे समय तक नजरअंदाज किया, वही प्रकृति के सबसे महत्वपूर्ण सफाईकर्मियों में शामिल है। गिद्धों को बचाना किसी एक पक्षी को बचाना नहीं है। यह मृत पशुओं के सुरक्षित निस्तारण, रोगों के जोखिम को कम करने, जैव-विविधता बनाए रखने और प्राकृतिक संतुलन को मजबूत करने का प्रयास है। पिंजौर जैसे केंद्र उम्मीद जरूर जगाते हैं, लेकिन अंतिम सफलता तब मानी जाएगी जब गिद्धों के झुंड फिर से खुले आसमान में स्वतंत्र रूप से दिखाई दें और प्रकृति की यह मुफ्त सफाई व्यवस्था अपने पुराने स्वरूप में लौट सके।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)